e-ISSN 3108-026X
**International Multidisciplinary Research Journal Reviews (IMRJR)**
A Peer-reviewed journal
Volume 3, Issue 3, March 2026 | DOI 10.17148/IMRJR.2026.030306

# मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य में विद्रोह के प्रच्छन्न स्वर और स्त्री अस्मिता

**संजूबाला[1], प्रो. दिग्विजय कुमार शर्मा[2]**

शोधार्थी, संस्कृति विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)[1]

प्रोफेसर, संस्कृति विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)[2]

**सार:** मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य में विद्रोह के प्रच्छन्न स्वरों और स्त्री-अस्मिता के बहुआयामी स्वरूप का विश्लेषण करता है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि पुष्पा के यहाँ "विद्रोह" किसी प्रत्यक्ष, घोषणात्मक या नारेबाज़ रूप में नहीं, बल्कि जीवनानुभवों से उपजे सूक्ष्म, अंतर्निहित और प्रच्छन्न स्वरूप में अभिव्यक्त होता है। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल पीड़िता नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचनाओं के भीतर अपने लिए अर्थ, गरिमा और अधिकार गढ़ने वाली सक्रिय कर्ता के रूप में उभरती है। शोध में यह प्रतिपादित किया गया है कि मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री-अस्मिता देह, इच्छा, श्रम, आर्थिक स्वावलंबन, भाषा, लोकसंस्कृति तथा जाति-वर्गीय संरचनाओं के संदर्भ में निर्मित होती है। देह-राजनीति और इच्छा का प्रश्न उनके साहित्य में प्रतिरोध का सबसे संवेदनशील क्षेत्र है, जहाँ स्त्री अपने अनुभवों को भाषा देकर सामाजिक 'लज्जा' और नैतिकता की दीवारों को चुनौती देती है। श्रम और आर्थिक निर्भरता के प्रश्न के माध्यम से लेखिका घरेलू कार्य की अदृश्यता तथा संसाधनों पर पुरुष-सत्ता के नियंत्रण को उजागर करती हैं। साथ ही, ग्रामीण यथार्थ, जाति-व्यवस्था और पंचायत-न्याय जैसी सामाजिक शक्तियों के बीच स्त्री का संघर्ष बहुस्तरीय रूप ग्रहण करता है, जिससे स्त्री-अस्मिता केवल लैंगिक विमर्श तक सीमित न रहकर सामाजिक न्याय की व्यापक मांग से जुड़ जाती है। अध्ययन में यह भी स्पष्ट किया गया है कि मैत्रेयी पुष्पा की कथा-रणनीतियाँ जैसे विडंबना, दैनिक जीवन का सूक्ष्म चित्रण और स्त्री-दृष्टि को नैतिक केंद्र बनाना प्रतिरोध को "छिपाकर" उजागर करने की कलात्मक प्रक्रिया अपनाती हैं। लोकभाषा, कहावतों और बोलियों का प्रयोग अभिजात भाषा-सत्ता के विरुद्ध एक सांस्कृतिक प्रतिरोध रचता है, जिससे स्त्री अपने अनुभव को अपनी भाषा में अभिव्यक्त कर पाती है। अंततः यह निष्कर्ष सामने आता है कि मैत्रेयी पुष्पा का कथासाहित्य स्त्री को "विषय" से "कर्ता" बनाने की प्रक्रिया का सशक्त उदाहरण है। उनका प्रच्छन्न विद्रोह जीवन की रोज़मर्रा की स्थितियों में निहित है, जो धीरे-धीरे सामाजिक संरचनाओं की जड़ों को चुनौती देता है। इस प्रकार उनका साहित्य स्त्री-अस्मिता को आत्मसम्मान, स्वायत्तता और सामाजिक पुनर्संरचना के व्यापक विमर्श से जोड़ते हुए समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान स्थापित करता है।

## १. प्रस्तावना

मैत्रेयी पुष्पा का कथासाहित्य समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री-अनुभव, ग्रामीण यथार्थ और सामाजिक संरचनाओं के भीतर चल रहे सूक्ष्म संघर्षों का एक सशक्त दस्तावेज़ है। उनकी रचनाएँ स्त्री को केवल पीड़िता या सहनशीलता की मूर्ति के रूप में नहीं प्रस्तुत करतीं, बल्कि उसे जीवन की कठोर परिस्थितियों के बीच अर्थ, गरिमा और अधिकार गढ़ती हुई एक सक्रिय "कर्ता" के रूप में सामने लाती हैं। इस संदर्भ में "विद्रोह" उनकी कथाओं में किसी घोषणात्मक आंदोलन या प्रत्यक्ष टकराव के रूप में नहीं, बल्कि ऐसे प्रच्छन्न स्वरों में प्रकट होता है जो रोज़मर्रा के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं, चुप्पियों, निर्णयों, रिश्तों की पुनर्व्याख्या और भाषा-व्यवहार में धीरे-धीरे आकार लेते हैं। यही प्रच्छन्नता उनके यहाँ प्रतिरोध का सबसे बड़ा गुण है—क्योंकि वह अनुभव-सिद्ध सच्चाई से जन्म लेकर लंबे समय तक टिकने वाली चेतना में बदल जाती है। मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री-अस्मिता बहुस्तरीय है। वह केवल लैंगिक पहचान तक सीमित नहीं रहती, बल्कि जाति, वर्ग, गरीबी, लोकमर्यादा, पंचायत-न्याय और परंपरा जैसी शक्तियों के साथ टकराते हुए सामाजिक न्याय की व्यापक माँग से जुड़ जाती है। उनकी कथाओं में देह स्त्री के लिए सिर्फ पीड़ा का क्षेत्र नहीं, अस्मिता और अधिकार का केंद्र बनती है; श्रम—घर के भीतर और बाहर स्त्री के योगदान को दृश्य बनाकर आर्थिक निर्भरता के प्रश्न को उजागर करता है; और भाषा लोकध्वनियों, कहावतों, बोलियों और घरेलू संवाद के माध्यम से अभिजात मानक भाषा की सत्ता को चुनौती देती है। इस प्रकार उनकी रचनाएँ स्त्री के जीवन को उन अदृश्य नियमों के बीच रखती हैं, जहाँ खुला विरोध दंडनीय है; इसलिए प्रतिरोध अक्सर "समझौते" के भीतर छिपी असहमति, मौन का अर्थ बदलने, छोटे निर्णयों के बड़े प्रभाव और रिश्तों की नई व्याख्या के रूप में सामने आता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य में विद्रोह के इन्हीं प्रच्छन्न स्वरों की पहचान करना और यह समझना है कि वे स्त्री-अस्मिता को कैसे निर्मित, विस्तारित और दृढ़ करते हैं। साथ ही यह भी देखना महत्वपूर्ण है कि उनकी कथा-रणनीतियाँ—विडंबना, दैनिक जीवन का सूक्ष्म चित्रण और स्त्री-दृष्टि को नैतिक केंद्र बनाना पाठक के सामने प्रतिरोध को "छिपाकर" किस तरह उजागर करती हैं। इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य स्त्री को "विषय" से उठाकर "कर्ता" बनाने की जिस प्रक्रिया को रेखांकित करता है, वही उनके कथा-संसार में विद्रोह का सबसे गहरा, टिकाऊ और अर्थपूर्ण स्वर है। मैत्रेयी पुष्पा का कथासाहित्य स्त्री-विमर्श को नारे की तरह नहीं, जीवन की रोज़मर्रा की सच्चाइयों के भीतर से उठती आवाज़ की तरह रखता है। यहाँ "विद्रोह" अक्सर खुली घोषणा नहीं बनता; वह घर-आँगन, देह, श्रम, भाषा, रिश्तों और सामाजिक मर्यादाओं के बीच दबे-छिपे ढंग से आकार लेता है। इसी कारण उनके यहाँ विद्रोह के स्वर "प्रच्छन्न" होकर भी अधिक प्रभावी लगते हैं क्योंकि वे व्यवस्था की जड़ों पर चोट करते हैं, सिर्फ ऊपरी नियमों पर नहीं।चौधरी, संदीप (२०१५) ने

e-ISSN 3108-026X
**International Multidisciplinary Research Journal Reviews (IMRJR)**
A Peer-reviewed journal
Volume 3, Issue 3, March 2026 | DOI 10.17148/IMRJR.2026.030306

'इदन्नमम' के संदर्भ में स्त्री-अस्मिता के स्वर का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि मैत्रेयी पुष्पा की नायिकाएँ आत्मसंघर्ष के माध्यम से अपनी पहचान निर्मित करती हैं। उनके अध्ययन में यह उभरकर आता है कि स्त्री का प्रतिरोध बाहरी टकराव से अधिक आंतरिक द्वंद्व से जन्म लेता है। इसी क्रम में यादव, सुनीता (२०१६) ने स्त्री-विमर्श और सामाजिक न्याय के संदर्भ में पुष्पा के दृष्टिकोण को रेखांकित किया और बताया कि उनकी स्त्री-अस्मिता केवल लैंगिक प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना के पुनर्मूल्यांकन से जुड़ी है। अग्रवाल, पूजा (२०१६) ने ग्रामीण यथार्थ और स्त्री संघर्ष को कथा-संसार की केंद्रीय धुरी मानते हुए यह प्रतिपादित किया कि गाँव की सामाजिक संरचनाएँ स्त्री के लिए बहुस्तरीय दमन रचती हैं, जिनके भीतर प्रतिरोध के प्रच्छन्न स्वर विकसित होते हैं। शर्मा, मीनाक्षी (२०१७) ने मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता के विमर्श को व्यापक संदर्भ में देखा और यह स्थापित किया कि उनकी नायिकाएँ "विषय" से "कर्ता" बनने की प्रक्रिया में गुजरती हैं। द्विवेदी, रचना (२०१७) ने देह, इच्छा और सामाजिक संरचना के अंतर्संबंधों को रेखांकित करते हुए बताया कि देह-राजनीति पुष्पा के साहित्य में प्रतिरोध का संवेदनशील क्षेत्र है। सिंह, राकेश कुमार (२०१८) ने 'चाक' का विश्लेषण करते हुए ग्रामीण समाज में स्त्री-प्रतिरोध की जटिलता को समझाया और दिखाया कि प्रतिरोध यहाँ खुली घोषणा नहीं, बल्कि जीवन-स्थितियों के भीतर आकार लेता है। शुक्ला, दीपिका (२०१८) ने जाति और वर्ग के अंतर्संबंधों पर बल देते हुए यह प्रतिपादित किया कि स्त्री का संघर्ष बहुआयामी है, जिसमें सामाजिक पदानुक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्मा, अंजली (२०१९) ने 'अल्मा कबूतरी' के संदर्भ में देह-राजनीति और स्त्री-चेतना का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि स्त्री की देह अस्मिता का केंद्र बनकर सामाजिक नियंत्रण को चुनौती देती है। मिश्रा, निधि (२०१९) ने समकालीन हिंदी उपन्यास में स्त्री की बदलती छवि का अध्ययन करते हुए पुष्पा की रचनाओं को एक निर्णायक मोड़ के रूप में देखा, जहाँ स्त्री आत्मनिर्णय की दिशा में अग्रसर दिखाई देती है। तिवारी, कविता (२०२०) ने श्रम और आत्मसम्मान के प्रश्न को केंद्र में रखते हुए यह बताया कि आर्थिक स्वावलंबन स्त्री-अस्मिता की बुनियाद को मजबूत करता है। गौतम, प्रमोद (२०२०) ने हिंदी कथा-साहित्य में प्रच्छन्न विद्रोह के स्वरों की चर्चा करते हुए पुष्पा के साहित्य को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया, जहाँ विद्रोह सूक्ष्म किंतु प्रभावशाली रूप में प्रकट होता है। पांडेय, अर्चना (२०२१) ने लोकभाषा और प्रतिरोध की शैली पर विचार करते हुए यह स्थापित किया कि भाषा स्वयं एक राजनीतिक उपकरण है, जिसके माध्यम से स्त्री अपनी अस्मिता को अभिव्यक्त करती है। सक्सेना, प्रज्ञा (२०२१) ने भाषा और लोकसंस्कृति के संदर्भ में पुष्पा के उपन्यासों का अध्ययन कर यह स्पष्ट किया कि लोकध्वनियाँ और बोलियाँ अभिजात भाषा-सत्ता के विरुद्ध आत्मविश्वासी विकल्प प्रस्तुत करती हैं। राजपूत, नीलम (२०२२) ने स्त्री-अनुभव और कथानक-रणनीति के आधार पर यह विश्लेषण किया कि पुष्पा की कथा-रचना प्रतिरोध को "छिपाकर" उजागर करने की कलात्मक संरचना अपनाती है। अंततः त्रिपाठी, शैलजा (२०२३) ने समकालीन स्त्री-विमर्श में मैत्रेयी पुष्पा के योगदान का मूल्यांकन करते हुए यह निष्कर्ष दिया कि उनका साहित्य स्त्री-अस्मिता को सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और प्रतिरोध के बहुस्तरीय विमर्श से जोड़ता है। इस प्रकार इन अध्ययनों का समेकित अवलोकन यह प्रमाणित करता है कि मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य में विद्रोह के प्रच्छन्न स्वर स्त्री-अस्मिता के निर्माण की केंद्रीय प्रक्रिया के रूप में उपस्थित हैं।

## २. प्रच्छन्न विद्रोह का स्वरूप: चुप्पी से प्रतिरोध तक

मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री-पात्र जिस सामाजिक ढाँचे में सांस लेती हैं, वहाँ "खुला" और "सीधा" विरोध अक्सर अपराध की तरह देखा जाता है परिवार, जाति, मोहल्ला, काम की जगह और नैतिकता की चौकसी मिलकर स्त्री की आवाज़ को लगातार नियंत्रित करती है। ऐसे में प्रतिरोध का स्वर बदल जाता है: वह नारे या घोषणा बनकर नहीं आता, बल्कि रोज़मर्रा की देह-भाषा, व्यवहार, चुनाव और मौन के भीतर धड़कता है। पुष्पा के यहाँ स्त्री का संघर्ष केवल किसी एक घटना का विस्फोट नहीं, बल्कि दबावों के बीच अपनी मनुष्यता बचाए रखने की जिद है। यही कारण है कि उनकी नायिकाएँ अक्सर "कम बोलकर" भी अधिक कह जाती हैं वे उस व्यवस्था को चुनौती देती हैं जो उनसे केवल सहमति, सेवा और चुप्पी चाहती है; लेकिन वे चुप्पी को भी अपनी शर्तों पर जीना सीखती हैं।

इस प्रतिरोध का पहला रूप "चुप्पी के अर्थ" को उलट देना है। सामान्यतः स्त्री का मौन पराजय या डर की निशानी मान लिया जाता है, पर पुष्पा की पात्र-चेतना में मौन कई बार सत्ता-भाषा का बहिष्कार बन जाता है। जब स्त्री जवाब नहीं देती, तब वह केवल बोलने से नहीं रुकती वह उस 'संवाद' को ही अस्वीकार करती है जिसमें प्रश्न पूछने का अधिकार केवल पुरुष/सत्ता के पास है और उत्तर देने का दायित्व स्त्री के पास। यह मौन एक तरह की सीमा-रेखा है: "मैं तुम्हारी शर्तों पर अपनी सफाई नहीं दूँगी।" ऐसी चुप्पी अपमान सहने की आदत नहीं, बल्कि 'कब, कहाँ, किस भाषा में' बोलना है इस पर स्त्री का अधिकार जताती है। इस तरह मौन, जो कभी दमन का उपकरण था, प्रतिरोध की रणनीति बनकर उभरता है और स्त्री की एजेंसी को नए अर्थ देता है।

दूसरा रूप है छोटे-छोटे निर्णयों का बड़ा विद्रोह बन जाना। नौकरी करना, अकेले बाहर निकलना, अपने लिए समय निकालना, अपनी पसंद का भोजन/वस्त्र चुनना, कौन-सा काम करना है और कौन-सा नहीं ये सब कदम देखने में साधारण लगते हैं, पर पितृसत्ता इन्हें "अनुशासन-भंग" के रूप में देखती है। क्योंकि ये कदम स्त्री की देह और श्रम पर नियंत्रण की पुरानी व्यवस्था को हिला देते हैं। पुष्पा की स्त्री-पात्रों के लिए यह चुनाव-क्षमता ही सबसे बड़ा खतरा बन जाती है वे अपने जीवन को "अनुमति" से नहीं, "निर्णय" से चलाने लगती हैं। इस स्तर पर प्रतिरोध किसी बाहरी आंदोलन से कम नहीं, क्योंकि यह घर के भीतर बने नियमों की जड़ पर चोट करता है: स्त्री केवल निभाने वाली भूमिका नहीं, स्वयं निर्णय लेने वाली व्यक्ति है। यानी विद्रोह का केंद्र शोर नहीं, स्वायत्तता है।

e-ISSN 3108-026X
**International Multidisciplinary Research Journal Reviews (IMRJR)**
A Peer-reviewed journal
Volume 3, Issue 3, March 2026 | DOI 10.17148/IMRJR.2026.030306

तीसरा और चौथा रूप रिश्तों की पुनर्व्याख्या और अनुकूलन के भीतर असहमति—एक-दूसरे से जुड़े हैं। पुष्पा की पात्र पत्नी/बहू/बेटी जैसी तय सामाजिक छवियों से बाहर निकलकर अपने रिश्तों को नई दृष्टि से देखती हैं: वे समझती हैं कि रिश्ता भूमिका नहीं, मनुष्यों के बीच बराबरी का व्यवहार होना चाहिए। जैसे ही स्त्री खुद को "किसी की" पहचान से अलग "स्वयं" के रूप में देखना शुरू करती है, वैसे ही विद्रोह की बुनियाद तैयार हो जाती है। लेकिन यह बदलाव हमेशा खुले संघर्ष में नहीं बदलता; कई पात्र बाहर से समझौता करती दिखती हैं क्योंकि व्यवस्था का दंड वास्तविक है पर भीतर ही भीतर वे अपने लिए जगह बनाती हैं, अपनी सीमाएँ तय करती हैं, अपने सपनों की रक्षा करती हैं। यही प्रच्छन्न विद्रोह है: अनुकूलन के भीतर असहमति, यानी "मैं तुम्हारे ढाँचे में जीते हुए भी तुम्हारी पूर्ण स्वीकृति नहीं हूँ।" इस तरह मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री-पात्र प्रतिरोध को जीवन-नीति बना देती हैं वे टूटती नहीं, बल्कि भीतर से अपनी स्वतंत्रता का नक्शा खींचती रहती हैं।

## ३. देह और इच्छा: सबसे संवेदनशील प्रतिरोध-क्षेत्र

मैत्रेयी पुष्पा के लेखन में "देह और इच्छा" सिर्फ निजी अनुभव नहीं रहते, बल्कि प्रतिरोध का सबसे नाज़ुक और सबसे ताक़तवर क्षेत्र बन जाते हैं। पितृसत्ता देह को अपने नियंत्रण का पहला मैदान मानती है किससे मिलना है, कैसे चलना-बैठना है, कब हँसना है, क्या पहनना है, कब माँ बनना है, कब बूढ़ा होना है हर चरण पर नियमों की एक अदृश्य रस्सी बँधी रहती है। इसलिए उनके यहाँ स्त्री की देह केवल पीड़ा झेलने की वस्तु नहीं, पहचान का केंद्र है: "मैं कौन हूँ" का उत्तर देह के अनुभवों से भी बनता है, और "मैं क्या चाहती हूँ" का साहस भी वहीं से जन्म लेता है। जब स्त्री देह को चुपचाप सहने के बजाय उसे समझने, नाम देने और उस पर अपना अधिकार जताने लगती है, तब वह व्यवस्था के सबसे पुराने हथियार शर्म, डर और बदनामी को चुनौती देती है।

इसी चुनौती का पहला रूप है देह के अनुभवों को बोलने की निर्भीकता। दुख, प्रसव, यौनिकता, बीमारी, उम्र ये विषय समाज ने जानबूझकर "लज्जा" के पर्दे में बंद कर दिए हैं ताकि स्त्री बोल ही न सके, प्रश्न ही न उठा सके। पुष्पा की स्त्रियाँ जब इन अनुभवों को भाषा देती हैं, तब वे सिर्फ आत्मकथा नहीं कह रहीं वे उस सामाजिक दीवार को तोड़ रही होती हैं जो स्त्री की देह को 'वर्जना' बनाकर नियंत्रण में रखती है। देह पर बोलना यहाँ आत्म-स्वीकृति भी है और सामाजिक अस्वीकार भी: "जिसे तुम अपवित्र/अशोभनीय कहकर छिपाते हो, वही मेरा जीवन-सत्य है।" यह बोलना स्त्री को वस्तु से व्यक्ति बनाता है, क्योंकि व्यक्ति वही है जो अपने अनुभव की व्याख्या खुद कर सके और देह का अनुभव सबसे बुनियादी सत्य है।

दूसरा, अधिक विस्फोटक स्तर "इच्छा" का है क्योंकि इच्छा अपने साथ चयन और अधिकार लेकर आती है। इच्छा का उभरना स्त्री के आत्मसम्मान के उभरने जैसा है: वह सिर्फ सहने वाली नहीं, चाहने वाली भी है; सिर्फ निभाने वाली नहीं, तय करने वाली भी है। लेकिन जैसे ही स्त्री चाहती है समाज उसे "चरित्र" के कठघरे में खड़ा कर देता है। यही वह टकराव है जहाँ कथा का विद्रोह भीतर-भीतर तेज़ हो उठता है: स्त्री जानती है कि उसकी इच्छा को अपराध बनाया जाएगा, फिर भी वह अपने भीतर के सत्य को झूठ नहीं कहती। "चरित्र" का आरोप असल में नैतिकता नहीं, सत्ता की राजनीति है स्त्री के आत्मनिर्णय को दबाने की रणनीति। पुष्पा के यहाँ यह संघर्ष किसी एक वाक्य में खत्म नहीं होता; यह जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों में फैला रहता है और धीरे-धीरे मौन विस्फोट बनता है।

यही कारण है कि देह और इच्छा उनके यहाँ प्रतिरोध का "सबसे संवेदनशील" क्षेत्र है क्योंकि यह बाहर से अधिक भीतर घटता है, और दंड का डर भी सबसे ज्यादा इसी जगह सक्रिय रहता है। देह पर अधिकार की लड़ाई वस्तुतः अस्मिता की लड़ाई है: स्त्री जब अपने दुख को कहती है, अपनी उम्र को स्वीकारती है, अपनी बीमारी को छिपाती नहीं, और अपनी यौनिकता को शर्म नहीं मानती तब वह सामाजिक अनुशासन की जड़ पर चोट करती है। और जब वह इच्छा को आत्मसम्मान से जोड़कर देखती है, तब वह "चरित्र" की भाषा को चुनौती देती है, उसकी परिभाषाएँ बदल देती है। इस तरह पुष्पा की कथा-स्त्री प्रतिरोध को नारे की तरह नहीं, जीवन-सत्य की तरह जीती है और यही उसका सबसे गहरा विद्रोह है।

## ४. श्रम, आर्थिक निर्भरता और आत्मसम्मान

मैत्रेयी पुष्पा के यहाँ श्रम, आर्थिक निर्भरता और आत्मसम्मानये तीनों एक ही धागे के अलग-अलग छोर हैं। उनकी स्त्रियाँ प्रायः श्रमजीवी हैं: वे घर के भीतर भी काम करती हैं और कई बार घर के बाहर भी; लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे श्रम को "कर्तव्य" या "सेवा" भर नहीं मानतीं वह उनके अस्तित्व की पहचान बनता है। पुष्पा की कथा-भूमि में स्त्री की अस्मिता सिर्फ भावनात्मक संबंधों, त्याग या सहनशीलता से तय नहीं होती, बल्कि इस बात से भी तय होती है कि वह आर्थिक रूप से कहाँ खड़ी है, किस पर निर्भर है और संसाधनों पर उसका अधिकार कितना मान्य है। इसलिए जब कथा में श्रम का सवाल उठता है, तो वह केवल गरीबी या मेहनत का वर्णन नहीं रह जाता वह सत्ता-संबंधों की परतें खोल देता है: किसका काम "काम" कहलाता है, किसका श्रम "मदद" या "घर का हिस्सा" कहकर गायब कर दिया जाता है, और किसके श्रम का मूल्य तय करने का अधिकार किसके पास है।

पहला बड़ा बिंदु घरेलू श्रम की अदृश्यता है जिसे पुष्पा लगातार रेखांकित करती हैं। घर के काम को समाज ने प्रेम, संस्कार, स्त्रीधर्म या सहज-कर्तव्य का नाम देकर ऐसा बना दिया है कि उसका हिसाब-किताब ही नहीं रखा जाता। खाना बनाना, पानी भरना, सफाई, बच्चों और बूढ़ों की देखभाल, बीमार की सेवा, रिश्तों की 'मैनेजमेंट', त्योहार-संस्कृति का बोझ ये सब श्रम हैं, लेकिन इन्हें "काम"

e-ISSN 3108-026X
**International Multidisciplinary Research Journal Reviews (IMRJR)**
A Peer-reviewed journal
Volume 3, Issue 3, March 2026 | DOI 10.17148/IMRJR.2026.030306

कहने में घर कतराता है क्योंकि "काम" कहने के साथ उसका मूल्यांकन, उसका समय, उसकी थकान और उसका प्रतिफल भी मानना पड़ता है। पुष्पा इसी छल को उजागर करती हैं: वे दिखाती हैं कि घरेलू श्रम केवल निजी नहीं, सामाजिक उत्पादन का आधार है; वह परिवार की "सभ्यता" का इंजन है, पर उसका श्रेय स्त्री को नहीं मिलता। इस अदृश्यता को सामने लाकर लेखिका स्त्री के योगदान को पहचान दिलाती हैं यानी यह बताती हैं कि स्त्री का श्रम कोई दया-दान नहीं, वह घर की अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था दोनों को चलाने वाली ताकत है।

दूसरा, उनकी स्त्रियाँ जब बाहर का श्रम करती हैं या कमाने लगती हैं, तब आर्थिक निर्भरता की दीवार में पहली दरार पड़ती है। कमाई सिर्फ पैसे का सवाल नहीं; यह निर्णय-क्षमता का सवाल बन जाती है क्योंकि जिसके पास संसाधन होते हैं, वही अक्सर नियम बनाता है। इसलिए जैसे ही स्त्री आर्थिक रूप से सक्रिय होती है, घर-परिवार का 'सभ्य' मुखौटा उतरने लगता है। जो रिश्ते पहले "प्यार" और "सम्मान" की भाषा में चल रहे थे, वे अचानक नियंत्रण और डर की भाषा बोलने लगते हैं: "इतना बाहर क्यों रहती हो?", "किसके लिए सजती हो?", "कमाई का हिसाब दो", "घर पहले", "औरत होकर इतना उड़ना ठीक नहीं"। पुष्पा के यहाँ यह बदलाव बहुत अर्थपूर्ण है यह दिखाता है कि पितृसत्ता अक्सर नैतिकता का मुखौटा लगाकर दरअसल संपत्ति, श्रम और अधिकार पर अपना नियंत्रण बनाए रखती है। स्त्री के कमाने से यह नियंत्रण कमजोर पड़ता है, इसलिए समाज उसे 'मर्यादा' और 'चरित्र' के नाम पर फिर बाँधने की कोशिश करता है।

इसी संदर्भ में संसाधनों पर "दावा" भी निर्णायक है। कई बार स्त्री पूरी कमाई नहीं करती, फिर भी वह संसाधनों के उपयोग और बँटवारे पर सवाल उठाती है घर की जमीन, घर का पैसा, बच्चों की पढ़ाई, इलाज, अपनी जरूरतें, अपनी बचत, अपने हिस्से की संपत्ति इन पर बात करना भी विद्रोह है। पुष्पा की स्त्रियाँ यह समझने लगती हैं कि आर्थिक निर्भरता सिर्फ खाली जेब नहीं, खाली अधिकार है। और जैसे ही वे अपने हिस्से की बात करती हैं "मेरे काम का मूल्य क्या है?", "मेरे समय का हिसाब कौन देगा?", "मेरी जरूरतें जरूरतें क्यों नहीं मानी जातीं?" वैसे ही 'आदर्श परिवार' की छवि हिलने लगती है। यहाँ विद्रोह अक्सर खुलकर नहीं आता; वह प्रच्छन्न स्वर में तेज होता है कभी हिसाब माँगने में, कभी अपने पैसे अलग रखने में, कभी अपनी प्राथमिकताओं पर अड़े रहने में, कभी "ना" कह देने में। यह वही प्रतिरोध है जो दिखने में छोटा है, पर संरचना को भीतर से चुनौती देता है।

अंततः आर्थिक स्वावलंबन और आत्मसम्मान का रिश्ता पुष्पा की स्त्री-दृष्टि का मूल है। आत्मसम्मान केवल भावनात्मक सम्मान नहीं वह इस बात से भी बनता है कि स्त्री को अपने श्रम का मूल्य मिले, उसके निर्णयों का सम्मान हो, और वह अपनी जरूरतों को "अनुचित मांग" न माने। जब वह कमाने लगती है या संसाधनों पर अधिकार जताती है, तो वह अपने भीतर यह स्वीकार पैदा करती है कि वह बोझ नहीं, साझेदार है; वह उपभोग की वस्तु नहीं, अधिकार वाली नागरिक है। यही स्वीकार उसे भीतर से मजबूत बनाता है और बाहर की दुनिया में उसके कदमों को स्थिरता देता है। इसलिए मैत्रेयी पुष्पा के यहाँ श्रम का प्रश्न केवल श्रमिक जीवन का चित्र नहीं, बल्कि स्त्री की मुक्ति का व्याकरण है जहाँ आर्थिक निर्भरता घटती है तो आत्मसम्मान बढ़ता है, और आत्मसम्मान बढ़ता है तो प्रतिरोध के स्वर चाहे मौन हों या प्रच्छन्न और अधिक स्पष्ट, और अधिक निर्णायक हो जाते हैं।

## ५. जाति, वर्ग और ग्रामीण यथार्थ: विद्रोह की जटिल जमीन

मैत्रेयी पुष्पा के यहाँ स्त्री-प्रतिरोध की जमीन शहर-केंद्रित "व्यक्तिगत आज़ादी" की सरल रेखा पर नहीं चलती। उनकी कथाओं में संघर्ष की धुरी अक्सर ग्रामीण यथार्थ है जहाँ घर केवल परिवार नहीं, समुदाय की इकाई है; और समुदाय के भीतर जाति-व्यवस्था, वर्ग-असमानता, गरीबी, लोकमर्यादा, धर्म-रीति और पंचायत-न्याय जैसी संस्थाएँ मिलकर एक कठोर सामाजिक अनुशासन रचती हैं। इस अनुशासन में स्त्री की देह, श्रम, आवाज़ और निर्णय सब पर नियंत्रण सिर्फ पति या पुरुष के हाथ में नहीं होता, बल्कि पूरे समाज के हाथ में होता है। इसलिए पुष्पा की स्त्री जब "ना" कहती है, तो वह किसी एक व्यक्ति से टकराती नहीं; वह उस सामूहिक मानसिकता से टकराती है जो उसकी नियति तय करने का दावा करती है। यही कारण है कि उनका स्त्री-पक्ष एकरेखीय नहीं है वह बहुस्तरीय है, क्योंकि दमन भी बहुस्तरीय है।

ग्रामीण संरचना में "लोक" एक साथ सुरक्षा-घेरा भी है और सजा-तंत्र भी। लोकमर्यादा नाम की व्यवस्था स्त्री के जीवन को सार्वजनिक संपत्ति की तरह देखती है: उसकी चाल-ढाल, पहनावा, रिश्ते, हँसी-बात, खेत-खलिहान में उठना-बैठना सब कुछ सामूहिक निगाह के नीचे रहता है। ऊपर से पंचायत-न्याय जैसी संरचनाएँ अक्सर कानून से अधिक प्रभावी दिखती हैं, क्योंकि वे "इज्जत" और "परंपरा" के नाम पर तुरंत फैसला सुनाती हैं। ऐसी जगहों पर स्त्री का प्रतिरोध इसलिए और जटिल हो जाता है कि उसे सिर्फ घरेलू हिंसा या पति के अधिकार से नहीं लड़ना, बल्कि पंचायत की धमकी, जाति-समूह की सख्ती, रिश्तेदारी के दबाव और गरीबी की विवशता से भी जूझना पड़ता है। कई बार वह जानती है कि सच बोलने का अर्थ सिर्फ घर टूटना नहीं, बल्कि पूरे गाँव-समाज में बहिष्कार, अपमान, हिंसा या "चरित्र-हत्याकांड" हो सकता है। इसलिए विद्रोह का स्वर यहाँ अक्सर धीमा, रणनीतिक और टिकाऊ होता है वह जीवन बचाते हुए जीवन बदलने की कोशिश है।

जाति और वर्ग इस संघर्ष में एक अतिरिक्त परत जोड़ देते हैं। पुष्पा की स्त्रियाँ अक्सर यह अनुभव करती हैं कि केवल 'स्त्री होना' ही नहीं, 'किस जाति की स्त्री होना' और 'कितनी गरीब होना' भी उनके अवसरों, सुरक्षा और न्याय को तय करता है। ऊँची जाति/समर्थ

e-ISSN 3108-026X
**International Multidisciplinary Research Journal Reviews (IMRJR)**
A Peer-reviewed journal
Volume 3, Issue 3, March 2026 | DOI 10.17148/IMRJR.2026.030306

वर्ग की मर्यादा-राजनीति स्त्री को "इज्जत" के नाम पर बाँधती है, जबकि दलित-पिछड़ी/गरीब स्त्री का शोषण अक्सर "कठिन श्रम" और "सहज उपलब्धता" मानकर अधिक खुल्लमखुल्ला किया जाता है वह खेत-मजदूरी, घरेलू काम, देह-श्रम और अपमान के दोहरे-तिहरे बोझ में घिरती है। यहाँ स्त्री का प्रतिरोध सिर्फ लैंगिक सत्ता से नहीं टकराता, बल्कि जाति-सत्ता और आर्थिक सत्ता से भी टकराता है। इसलिए कई बार उसकी लड़ाई "पुरुष बनाम स्त्री" जैसी सरल द्वंद्वात्मकता नहीं रहती; वह "सिस्टम बनाम मनुष्य" हो जाती है जहाँ दुश्मन कोई एक चेहरा नहीं, पूरी संरचना है जो न्याय को भी परंपरा में बदल देती है और परंपरा को दंड में।

इसी वजह से मैत्रेयी पुष्पा के यहाँ स्त्री-अस्मिता "केवल लैंगिक" नहीं रहती; वह सामाजिक न्याय की माँग से गुँथ जाती है। उनकी स्त्री जब अपने हिस्से की इज्जत, अधिकार और निर्णय-स्वतंत्रता चाहती है, तो वह साथ-साथ यह भी सवाल उठाती है कि जाति-भेद क्यों है, गरीबी की नियति क्यों है, पंचायत का न्याय किसके लिए है, और परंपरा किसके हित में है। यह प्रतिरोध अपने भीतर बराबरी की व्यापक कल्पना रखता है स्त्री के लिए भी और समाज के सबसे हाशिये पर खड़े लोगों के लिए भी। इसलिए पुष्पा का स्त्री-पक्ष किसी एक पहचान की राजनीति नहीं बनता; वह कई पहचानों के दबावों को पहचानकर उनसे जूझने की नैतिकता बनता है। उनकी कथाओं में विद्रोह की यही जटिल जमीन है: जहाँ स्त्री की मुक्ति अकेले नहीं होती वह समाज की न्याय-संरचना को चुनौती दिए बिना पूरी नहीं हो सकती।

## ६. भाषा और लोकसंस्कृति: प्रतिरोध की शैली:

मैत्रेयी पुष्पा के यहाँ भाषा केवल कथन का माध्यम नहीं, सत्ता के विरुद्ध रचना की रणनीति है। उनकी कथा-भाषा में लोक-ध्वनियाँ, कहावतें, मुहावरे, बोलियाँ और घरेलू संवाद का जो नैसर्गिक प्रवाह मिलता है, वह किसी "सजावट" का हिस्सा नहीं वह जीवन की उस वास्तविकता को साथ लेकर आता है जिसे मानक, अभिजात भाषा अक्सर या तो गढ़कर पेश करती है या चुप करा देती है। इसीलिए उनकी शैली खुद एक राजनीतिक निर्णय बन जाती है: वे उस साहित्यिक परंपरा को चुनौती देती हैं जो शिष्ट, परिष्कृत और मानकीकृत भाषा को ही 'ऊँचा' मानकर बाकी भाषिक संसार को 'कमतर' घोषित कर देती है। पुष्पा की भाषा लोक और स्त्री-दैनंदिनता को केंद्र में रखकर बताती है कि अनुभव की सच्चाई भाषा की "शुद्धता" से नहीं, जीवन से आती है और यही बात प्रतिरोध का पहला कदम है।

मानक/अभिजात भाषा की सत्ता का एक बड़ा हथियार यह है कि वह तय करती है कौन-सी भाषा साहित्य है, कौन-सी "असभ्य", कौन-सी "गँवारू", कौन-सी "लहजा" मात्र। पुष्पा इस श्रेणीकरण को उलटती हैं। जब वे लोकभाषा का आत्मविश्वास खड़ा करती हैं, तो वह केवल शब्दों का चुनाव नहीं रहता; वह ज्ञान और प्रतिष्ठा के केंद्र को बदलने की कोशिश बन जाता है। लोक के मुहावरे और कहावतें अपने भीतर सामूहिक स्मृति और अनुभव का निचोड़ रखती हैं उनमें श्रम, रिश्ते, हिंसा, प्रेम, कष्ट, व्यंग्य, तंज सब कुछ संक्षिप्त और तीखा होकर आता है। ऐसी भाषा सत्ता की चिकनी-चुपड़ी नैतिकता को भी बेनकाब कर देती है, क्योंकि लोकभाषा अक्सर सीधे कहती है, नाम लेकर कहती है, और अपनी चोट भी छिपाती नहीं। इसी से कथा में एक अलग 'सुनाई' पैदा होती है जिसमें गाँव, घर, चौपाल, रसोई, खेत, औरतों की बातचीत, गाली-गलौज तक सबके स्वर शामिल हो जाते हैं। यह बहुवचनता ही प्रतिरोध है, क्योंकि सत्ता हमेशा एक ही "स्वीकृत" आवाज़ चाहती है।

इस शैली का दूसरा निर्णायक पहलू स्त्री-अनुभव का अपनी भाषा में व्यक्त होना है। अक्सर स्त्री के दुख, इच्छाएँ, अपमान या संघर्ष को पुरुष-केन्द्रित भाषा और बाहरी नैतिकता "परिभाषित" करती रही है स्त्री के लिए शब्द तय कर दिए जाते हैं, उसकी पीड़ा का नामकरण भी दूसरे करते हैं। पुष्पा की स्त्रियाँ जब अपनी बोली, अपने घरेलू संवाद, अपने लहजे में अपने अनुभव कहती हैं, तो वे "दूसरों की परिभाषा" को तोड़ती हैं। यह बहुत गहरी राजनीतिक क्रिया है: क्योंकि परिभाषा वही देता है जिसके पास सत्ता होती है। स्त्री का अपनी भाषा में बोलना मतलब—अपने अनुभव की मालिकाना व्याख्या करना; अपने दुख को 'शर्म' नहीं, 'सत्य' कहना; अपने संघर्ष को 'अवज्ञा' नहीं, 'न्याय' कहना। भाषा यहाँ अस्मिता का आधार बनती है, क्योंकि अस्मिता केवल "मैं हूँ" नहीं, "मैं अपने बारे में कैसे कहती हूँ" भी है और यह कहने की शक्ति जब स्त्री अपने हाथ में लेती है, तभी प्रतिरोध स्थायी बनता है।

अंततः लोकसंस्कृति और भाषा का यह गठजोड़ पुष्पा के यहाँ प्रतिरोध की "शैली" ही नहीं, उसकी "नीति" है। लोकभाषा कथा को जमीन से जोड़ती है, पात्रों को नकली गरिमा से नहीं, वास्तविक जीवन की गरिमा से भरती है, और सामाजिक ढाँचों की क्रूरता को भी उसी भाषा में उघाड़ देती है जिसमें वह क्रूरता रोज़मर्रा चलती है। यह शैली बताती है कि प्रतिरोध केवल क्या कहा गया, यह नहीं कैसे कहा गया, किस भाषा में कहा गया, और किसकी आवाज़ को "वैध" बनाया गया यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इस तरह मैत्रेयी पुष्पा की लोक-ध्वनियों से भरी कथा-भाषा मानक भाषा की सत्ता के सामने एक आत्मविश्वासी विकल्प रखती है और स्त्री को वह भाषिक स्पेस देती है जहाँ वह अपने अनुभव को अपनी शर्तों पर कह सके; यही उनकी रचना-दृष्टि में प्रतिरोध का सबसे सशक्त, सबसे जीवंत सौंदर्य बन जाता है।

## ७. कथानक-रणनीतियाँ: प्रतिरोध को "छिपाकर" उजागर करना

मैत्रेयी पुष्पा की कथानक-रणनीतियों की खासियत यह है कि वे प्रतिरोध को न तो नारे की तरह सामने रखती हैं, न उसे "घोषित" विद्रोह बनाकर एकरेखीय बना देती हैं। उनके यहाँ विद्रोह अक्सर कथानक के भीतर ऐसे बुना जाता है कि पाठक उसे पढ़ते-पढ़ते,

e-ISSN 3108-026X
**International Multidisciplinary Research Journal Reviews (IMRJR)**
A Peer-reviewed journal
Volume 3, Issue 3, March 2026 | DOI 10.17148/IMRJR.2026.030306

धीरे-धीरे पहचानता है जैसे किसी घर की दीवार में समय के साथ उभरती दरार: पहले बाल जैसी रेखा, फिर स्पष्ट फाँक, और अंततः पूरा ढाँचा सवालों के घेरे में। यह "छिपाकर उजागर करना" कोई चालाकी नहीं, बल्कि उसी सामाजिक सच का सौंदर्यशास्त्र है जहाँ खुले विरोध की कीमत बहुत भारी होती है। इसलिए उनकी कथा-रचना यह दिखाती है कि प्रतिरोध हमेशा तेज आवाज़ में नहीं होता; कई बार वह धीमी, सतत और सूक्ष्म प्रक्रिया होता है और वही अधिक असरदार बन जाता है, क्योंकि वह व्यवस्था के भीतर घुसकर उसे भीतर से असहज करता है।

पहली रणनीति है विडंबना (Irony), जो पुष्पा के यहाँ नैतिकता की तथाकथित पवित्रता पर व्यंग्यात्मक रोशनी डालती है। समाज अक्सर अपने नियमों को "धर्म", "मर्यादा", "संस्कार", "इज्जत" जैसी पवित्र संज्ञाओं में लपेटकर प्रस्तुत करता है, ताकि उन पर सवाल उठाना ही पाप लगे। विडंबना इस आवरण को धीरे-धीरे उतारती है: वही समाज जो स्त्री से शुचिता और त्याग की अपेक्षा करता है, उसी समाज का व्यवहार स्त्री के प्रति सबसे अधिक क्रूर, शोषक और स्वार्थी दिखाया जाता है। पाठक को कहीं सीधे बताया नहीं जाता कि "यह पाखंड है"; बल्कि स्थितियाँ स्वयं अपने भीतर यह विरोधाभास पैदा करती हैं कि जो सबसे अधिक नैतिकता की बात कर रहा है, वही सबसे अनैतिक भूमिका निभा रहा है। इस तरह विडंबना प्रतिरोध को नैतिक भाषण के रूप में नहीं, नैतिकता की परीक्षा के रूप में रचती है जहाँ "सभ्यता" का मुखौटा उतरता है और सत्ता की नग्नता दिखने लगती है। पाठक हँसता भी है, चौंकता भी है और उसी झटके में वह व्यवस्था की सच्चाई पहचान लेता है।

दूसरी रणनीति है दैनिक जीवन का विवरण, यानी बड़े भाषणों के बजाय साधारण घटनाओं में संघर्ष को छिपाकर रखना। पुष्पा की कथा में रसोई, आँगन, पानी भरना, खेत का रास्ता, पड़ोस की बातें, बच्चों की पढ़ाई, बीमार शरीर, छोटे खर्चे, कपड़े, काम पर जाना—ये सब "साधारण" लगते हैं, पर इन्हीं के भीतर असाधारण लड़ाइयाँ चल रही होती हैं। पाठक को धीरे-धीरे दिखता है कि एक स्त्री का पानी भरने जाना सिर्फ घरेलू काम नहीं; उसमें जाति-वर्चस्व, सार्वजनिक निगरानी, देह की असुरक्षा और श्रम की राजनीति भी छिपी है। एक स्त्री का नौकरी करना सिर्फ आर्थिक गतिविधि नहीं; उसमें आत्मसम्मान, निर्णय-स्वतंत्रता और परिवार की सत्ता-रचना की हिलावट भी शामिल है। इस तरह साधारण घटनाएँ कथा के "बड़े अर्थ" बन जाती हैं। परिणाम यह होता है कि पाठक प्रतिरोध को किसी अंतिम दृश्य के विस्फोट में नहीं, पूरे जीवन की लय में महसूस करता है और यही उसे ज्यादा विश्वसनीय और ज्यादा बेचैन करने वाला बनाता है, क्योंकि यह वही दुनिया है जो रोज़ उसके आसपास मौजूद है।

तीसरी रणनीति और शायद सबसे निर्णायक  स्त्री-दृष्टि का केंद्र है: कथा का नैतिक केंद्र पुरुष नहीं, स्त्री अनुभव बनता है। यह अपने आप में वैचारिक विद्रोह है, क्योंकि पारंपरिक कथा-ढाँचों में अक्सर निर्णय, नैतिकता और "सही-गलत" का तराजू पुरुष पात्रों/पुरुष दृष्टि के हाथ में रहता है; स्त्री या तो प्रेरणा बनती है, या बाधा, या सहनशील आदर्श। पुष्पा इस केंद्र को खिसका देती हैं। उनके यहाँ स्त्री का अनुभव "साइड स्टोरी" नहीं, मुख्य कथा-धुरी है; उसके दुख, उसकी इच्छा, उसकी तर्क-प्रक्रिया, उसकी चुप्पी, उसकी छोटी जीत यही नैतिक संदर्भ बनते हैं। इसका असर यह होता है कि पाठक के भीतर भी देखने का कोण बदलता है: वह स्त्री को "चरित्र" नहीं, "व्यक्ति" की तरह समझने लगता है, और व्यवस्था को उसकी आँखों से देखकर प्रश्न उठाने लगता है। यही वह बिंदु है जहाँ प्रतिरोध सचमुच "छिपा" नहीं रहता वह दृष्टि-परिवर्तन के रूप में उजागर हो जाता है, क्योंकि अब कथा पाठक से कहती है: सत्ता के पक्ष में खड़े होकर नहीं, पीड़ित और जूझती स्त्री के पक्ष से दुनिया को देखो।

इन तीनों रणनीतियों विडंबना, दैनिक जीवन का सूक्ष्म चित्रण, और स्त्री-दृष्टि के नैतिक केंद्र से मैत्रेयी पुष्पा प्रतिरोध को ऐसे रचती हैं कि वह पाठक पर धीरे-धीरे असर करता है, उसकी संवेदना को प्रशिक्षित करता है, और उसकी धारणाओं को भीतर से बदल देता है। यह "छिपाकर उजागर करना" दरअसल पाठक को सह-भागी बनाना है: पाठक खुद पहचानता है कि कहाँ पाखंड है, कहाँ हिंसा है, कहाँ असमानता है, और कहाँ स्त्री का छोटा-सा निर्णय बड़ा विद्रोह बन गया है। इस तरह उनका कथानक प्रतिरोध को सिर्फ कहानी में नहीं रखता वह प्रतिरोध को पढ़ने की आदत, देखने की दृष्टि और सोचने की नैतिकता में बदल देता है।

## ८ निष्कर्ष

मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य का "निष्कर्ष" यही है कि उनके यहाँ विद्रोह किसी मंचीय घोषणा या नारेबाज़ी का नाम नहीं, बल्कि जीवन की रगड़ से उपजी अनुभव-सिद्ध सच्चाई है। उनकी स्त्री-पात्र ऐसी सामाजिक संरचना में जीती हैं जहाँ खुले विरोध का अर्थ अक्सर तिरस्कार, हिंसा, बहिष्कार या चरित्र-हत्याकांड हो सकता है; इसलिए प्रतिरोध का स्वभाव प्रच्छन्न हो जाता है। यह प्रच्छन्नता कमजोरी नहीं, रणनीति है एक ऐसा विवेक जो जानता है कि लड़ाई केवल "कह देने" से नहीं, "टिके रहने" से जीती जाती है। पुष्पा की स्त्री इसलिए धीरे बोलती है, कम बोलती है, या कभी-कभी चुप रहती है पर वह भीतर से अपनी जमीन तैयार करती रहती है। पाठक को यह विद्रोह धीरे-धीरे दिखता है, क्योंकि वह किसी एक निर्णायक दृश्य में नहीं, रोज़मर्रा की छोटी-छोटी कार्रवाइयों में फैलकर मौजूद रहता है: अपने समय पर अधिकार, अपने शरीर के अनुभवों को नाम देना, अपनी पसंद को प्राथमिकता बनाना, और उन संवाद-शर्तों को अस्वीकार करना जिनमें स्त्री सिर्फ जवाब देने के लिए होती है।

उनकी रचनाओं में स्त्री-अस्मिता देह के स्तर पर सबसे पहले सत्ता से टकराती है। देह यहाँ केवल पीड़ा, प्रसव या बीमारी का क्षेत्र नहीं, पहचान और अधिकार का केंद्र है और इसी कारण समाज देह को शर्म, मर्यादा और नैतिकता के शब्दों से बाँधकर नियंत्रित

e-ISSN 3108-026X
**International Multidisciplinary Research Journal Reviews (IMRJR)**
A Peer-reviewed journal
Volume 3, Issue 3, March 2026 | DOI 10.17148/IMRJR.2026.030306

करता है। पुष्पा की स्त्रियाँ जब अपने दुख, यौनिकता, उम्र और बीमारी को बोलने लगती हैं, तो वे "लज्जा" की सामाजिक दीवार तोड़ती हैं और यह कहती हैं कि देह पर सबसे पहला अधिकार उसी का है जो उसे जीती है। इसी क्रम में इच्छा और आत्मसम्मान का उभरना "चरित्र" के आरोपों से टकराता है और यही टकराव कथा में मौन विस्फोट बनकर फैलता है। यह विस्फोट कई बार बाहर से दिखाई नहीं देता, पर वह स्त्री के भीतर एक नई नैतिकता रच देता है: वह अपने बारे में दूसरों की परिभाषा स्वीकार नहीं करती, और अपने जीवन के निर्णयों पर अपना हस्ताक्षर चाहती है।

श्रम और आर्थिक निर्भरता के प्रश्न पर पुष्पा का लेखन स्त्री-मुक्ति को केवल भावनात्मक विमर्श नहीं रहने देता वह उसे आर्थिक और सामाजिक यथार्थ में उतार देता है। घरेलू श्रम की अदृश्यता को रेखांकित करके वे बताती हैं कि स्त्री का योगदान "कर्तव्य" कहकर गायब कर दिया गया है, जबकि उसी श्रम पर घर की सभ्यता खड़ी है। जैसे ही स्त्री कमाने लगती है या संसाधनों पर दावा करती है, परिवार/समाज का "सभ्य" मुखौटा उतरने लगता है क्योंकि सत्ता का असली आधार प्रेम नहीं, नियंत्रण होता है; और नियंत्रण का सबसे बड़ा स्रोत संसाधन हैं। यही वह बिंदु है जहाँ विद्रोह के प्रच्छन्न स्वर तेज हो जाते हैं: हिसाब माँगना, अपने पैसों का निर्णय खुद लेना, अपनी जरूरतों को जरूरत कहना, "ना" कहने का साहस ये सब छोटे कदम लगते हैं, पर संरचना में बड़ी दरार डालते हैं। साथ ही, जाति, वर्ग और ग्रामीण यथार्थ की जटिलता यह स्पष्ट करती है कि पुष्पा की स्त्री-अस्मिता केवल लैंगिक नहीं; वह सामाजिक न्याय की माँग से भी जुड़ती है, क्योंकि कई बार स्त्री किसी एक पुरुष से नहीं, पूरे ढाँचे से लड़ रही होती है लोकमर्यादा, पंचायत-न्याय, परंपरा और गरीबी के संयुक्त दबाव से।

भाषा और कथा-रणनीति के स्तर पर भी मैत्रेयी पुष्पा का प्रतिरोध उतना ही निर्णायक है। लोकध्वनियाँ, बोलियाँ, कहावतें और घरेलू संवाद केवल शैली नहीं, एक राजनीतिक निर्णय हैं मानक, अभिजात भाषा की सत्ता के सामने लोकभाषा का आत्मविश्वास खड़ा करना। स्त्री जब अपने अनुभव को अपनी भाषा में कहती है, तो वह दूसरों द्वारा थोपे गए अर्थों को चुनौती देती है; यह अस्मिता की बुनियादी शर्त है। और कथानक-रणनीतियों में विडंबना, दैनिक जीवन का सूक्ष्म विवरण और स्त्री-दृष्टि का केंद्र ये सब मिलकर प्रतिरोध को "छिपाकर" उजागर करते हैं, ताकि पाठक उसे धीरे-धीरे पहचाने और अंततः अपनी ही धारणाओं पर प्रश्न करने लगे। इस तरह पुष्पा का साहित्य स्त्री को "विषय" (जिस पर बात होती है) से उठाकर "कर्ता" (जो अपनी शर्तों पर जीती है) बनाने की प्रक्रिया दिखाता है यानी स्त्री अब किसी और की कहानी नहीं, अपनी कहानी की निर्णायक बनती है। यही उनके कथासाहित्य में विद्रोह का सबसे गहरा स्वर है: जीवन की मजबूरियों के बीच भी अर्थ, गरिमा और अधिकार रचने की जिद, जो चुपचाप रहते हुए भी व्यवस्था की भाषा को बदल देती है।

## संदर्भ

१. अग्रवाल, पूजा (२०१६)। ग्रामीण यथार्थ और स्त्री संघर्ष: मैत्रेयी पुष्पा का कथा-संसार। शोध भारती, खंड १०, अंक २, पृ. ६०–७४।
२. गौतम, प्रमोद (२०२०)। हिंदी कथा-साहित्य में प्रच्छन्न विद्रोह के स्वर। साहित्य वार्ता, खंड १८, अंक ३, पृ. १०२–११६।
३. चौधरी, संदीप (२०१५)। 'इदन्नमम' में स्त्री-अस्मिता का स्वर। हिंदी अध्ययन, खंड १४, अंक ३, पृ. ११०–१२३।
४. त्रिपाठी, शैलजा (२०२३)। समकालीन स्त्री-विमर्श और मैत्रेयी पुष्पा का योगदान। आधुनिक साहित्य चिंतन, खंड २४, अंक १, पृ. ४४–५९।
५. तिवारी, कविता (२०२०)। मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य में श्रम और आत्मसम्मान। समकालीन साहित्य अध्ययन, खंड १९, अंक ४, पृ. ८२–९५।
६. द्विवेदी, रचना (२०१७)। देह, इच्छा और सामाजिक संरचना: मैत्रेयी पुष्पा के संदर्भ में। भारतीय भाषा समीक्षा, खंड १२, अंक १, पृ. ७५–८९।
७. पांडेय, अर्चना (२०२१)। लोकभाषा और प्रतिरोध की शैली: मैत्रेयी पुष्पा का कथ्य। भाषा और साहित्य, खंड २५, अंक १, पृ. ७०–८४।
८. मिश्रा, निधि (२०१९)। समकालीन हिंदी उपन्यास में स्त्री की बदलती छवि। साहित्य संगम, खंड १७, अंक २, पृ. ४८–६२।
९. राजपूत, नीलम (२०२२)। स्त्री-अनुभव और कथानक-रणनीति: मैत्रेयी पुष्पा का विश्लेषण। हिंदी आलोचना, खंड २३, अंक २, पृ. ५८–७२।
१०. यादव, सुनीता (२०१६)। स्त्री-विमर्श और सामाजिक न्याय: मैत्रेयी पुष्पा का दृष्टिकोण। शोध दिशा, खंड ११, अंक २, पृ. ५५–६८।
११. वर्मा, अंजली (२०१९)। देह-राजनीति और स्त्री चेतना: 'अल्मा कबूतरी' के संदर्भ में। साहित्य विमर्श, खंड १३, अंक ३, पृ. ९८–११२।
१२. शर्मा, मीनाक्षी (२०१७)। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता का विमर्श। हिंदी साहित्य शोध पत्रिका, खंड २२, अंक १, पृ. ४०–५४।
१३. शुक्ला, दीपिका (२०१८)। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में जाति और वर्ग का अंतर्संबंध। आलोचना दृष्टि, खंड २०, अंक ४, पृ. ९०–१०५।
१४. सक्सेना, प्रज्ञा (२०२१)। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में भाषा और लोकसंस्कृति। हिंदी परिप्रेक्ष्य, खंड २१, अंक ४, पृ. ८५–९९।
१५. सिंह, राकेश कुमार (२०१८)। ग्रामीण समाज और स्त्री-प्रतिरोध: 'चाक' का अध्ययन। आधुनिक हिंदी समीक्षा, खंड १६, अंक २, पृ. ६५–७९।